

तीर्थ विज्ञान

तीर्थ तीन कारणों से पवित्र माने जाते हैं –

1. स्थल की कुछ आश्चर्यजनक प्राकृतिक विशेषताओं के कारण
2. या किसी जलीय स्थल की अनोखी रमणीयता के कारण,
3. या किसी तपः पूत ऋषि या मुनि के वहां स्थान करने, तप साधना करने अथवा दीर्घकाल तक निवास करने के कारण। अतः शास्त्रीय मान्यता के अनुसार तीर्थ का सरल अर्थ ऐसा स्थल या जलयुक्त स्थान (नदी, प्रपात, जलाशय आदि) है जो अपने विलक्षण स्वरूप के कारण आत्मचिंतन एवं स्वनिर्मलीकरण की भावना को जागृत करें। इसके लिए ऐसे स्थान पर शालिग्राम आदि का होना अनिवार्य नहीं।

अनेक वैदिक-पौराणिक विवरणों से यह स्पष्ट है कि तीर्थ जल का पर्याय है। सामान्य अर्थ में जल का किनारा या तीर ही शास्त्रीय तीर्थ और लोक परंपरा का तीर्थ है। शास्त्रीय परंपरा के अनुसार 'तीर्थ' अत्यंत व्यापक अवधारणा है जो गुरु और संत महात्माओं की क्षमताओं को भी प्रभावित करती है। संक्षेप में तीर्थ पंचतत्व की लयात्मक पारंपरिकता (यज्ञ-व्यवस्था) या प्राकृतिक यज्ञ का सहज सौंदर्य है।

धार्मिक संदर्भ : भक्तिकाल में विकसित लोक परंपराओं में तीर्थ ईश्वर दर्शन यानि परम पुरुष या प्रकृति की कृपा, अनुकम्पा से तादात्म्य और पिता रूप परमेश्वर या मां-स्वरूपा प्रकृति के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने का सरल और सहज मार्ग है इसीलिए हिन्दुस्तानी गांव में जहां कुआं है या अन्यकोई जल स्रोत है वहीं मंदिर और शिवालय है। जहां घर और घाट वहीं तीर्थ। इसी वैदिक एवं लोक विज्ञान की परिभाषा महात्मा कबीर दास ने भी की थी :

“माया महाठगिनी मै जानी,
केशव के कमला बनू बैठी,
शिव के भवन भवानी,
पण्डा की मूरत बन बैठी,
तीर्थ में भई पानी।”

तीर्थ विज्ञान के अनुसार लौकिक जीवन या मायावती संसार में जो कुछ दृष्टव्य है वह जल के माध्यम से निर्मित हुआ है। जल समस्त जीवन का आधार है। पंचतत्व के पारस्परिक यज्ञ/बलिदान/आहुति का मूल माध्यम जल ही है। इस प्राकृतिक यज्ञ प्रक्रिया के लिए जल का पवित्र और निर्मल होना अनिवार्य है। जल की पवित्रता, निर्मलता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए शौच, अशौच, शुद्ध-अशुद्ध की विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित की गई थी। पंचतत्व यज्ञ में मूल उत्प्रेरक तत्व के रूप में जल की अनिवार्य निर्मलता के कारण ही जल को पवित्रता और पुण्य का कारक माना गया। अनिवार्य निर्मलता के कारण ही जल में स्वनिर्मलीकरण की प्रकृति निहित है। यह आम जानकारी की बात है कि पानी बहते-बहते स्वच्छ

होता रहता है। ठहरा जल भी वायु के वेग से हिलोरे लेकर निर्मलीकरण का प्रयास करता है। यूं भी सालाना चक्र में पानी स्वयंमेव भाप बनकर, भाप से बादल बनकर और फिर बरस कर स्वनिर्मलीकरण की प्रक्रिया को निरंतर कायम रखता है। इस स्व-निर्माल्य प्रकृति के कारण भी जल को पवित्रता और पुण्य का कारक माना गया। इसलिए जलयुक्त तीर्थ को पाप नाशक, पुण्यकारक और पुण्य हेतु प्रेरणादायी माना गया। तीर्थ में स्नान का यही महत्व है कि मनुष्य जल का स्वनिर्मलीकरण गुण ग्रहण करें। जल स्मृतिकार भी है इसलिए सरस्वती रूप में पूजित भी।

तीर्थ दर्शन के लौकिक सिद्धांत के संदर्भ में यह समझना आवश्यक है कि तीर्थ यात्री या दर्शनार्थी की भावना में समानता होते हुए भी न तो ईसाईयत का 'पिलग्रिमेज' है और न ही इस्लामी अरब का 'हज'। तीर्थ विज्ञान समस्त गोचर जीवन के विलक्षण एवं अनिवार्य आधार जल के माध्यम से जीवन और जगत की निरंतरता और उसकी स्मृति का मूर्त सिद्धांत है। इसीलिए हिन्दू लोक परंपरा में जहां जल है वहीं तीर्थ है। गांव के कुएं, जोहड़ से लेकर झील, सरोवर, जल प्रपात, नदी, समुद्र तक पानी का हर स्थान लोक परंपरा और शास्त्रीय धारणा का तीर्थ है। राजस्थान की पुरानी हवेलियों में ठाकुर जी का आला और धड़ौंची (पानी रखने का स्थान) अगल-बगल बनाय जाती थी, दक्षिण भारत में जल के लिए प्रचलित शब्दों में एक आम शब्द तीर्थ ही है। प्रत्येक धार्मिक कृत्य और संस्कार के लिए उपयुक्त स्थल तीर्थ ही है। संस्कार विवाह का हो या नित्य श्राद्धकर्म का वरुणदेव के साक्षी के रूप में प्रत्यक्ष तीर्थ का स्थापित किया जाना अनिवार्य संस्कारविधि है। घट, कलश या लोटे में स्थापित किया गया जल वरुणदेव के रूप में समस्त तीर्थों का प्रतिनिधित्व करता है।

दक्षिण राजस्थान के आदिवासी अंचल में डूंगरपुर-बांसवाड़ा की सरहद पर स्थित बेणेश्वर की त्रिवेणी प्रयाग की त्रिवेणी से पुण्य प्रेरणा में किसी तरह कम नहीं। कार्तिक पूर्णिमा को राजस्थान, गुजरात के आदिवासी बहुत बड़ी संख्या में वहां उपस्थित होते हैं और अपने पितरों को जल देते हैं, पिंडदान करते हैं। इसी आदिवासी श्रद्धा से जल का वैदिक विज्ञान विकसित हुआ है। जो कुछ आदिकाल से नहीं है वह वैदिक नहीं है। सनातन, आदि और वैदिक पर्यायवाची है। यह तीनों ही अवधारणाएं इतिहास की परिधि से बाहर हैं। हरिद्वार और ब्रज की आत्मा वैदिक युगीन नहीं तो हरिद्वार और वृन्दावन हिन्दू तीर्थ नहीं। और जो कुछ आदि या वैदिक है वह न्यूनतम एक अरब 96 करोड़ वर्ष से अधिक पुराना है। आधुनिक हिन्दू को यह याद रखना होगा कि ऐतिहासिक और प्राग-ऐतिहासिक की समस्त कल्पना दस-बीस हजार साल भी पूरे नहीं कर सकती। ईसाईयत दो हजार वर्ष पुरानी है और इस्लाम की आयु सिर्फ 1400 साल की है – इतिहास की समस्त धारणा ईसा से 500-1000 वर्ष पूर्व तक फैलायी जा सकती है उससे अधिक नहीं और प्राग-ऐतिहासिक की कल्पना को ईसा से दस हजार वर्ष पूर्व तक खींचा जा सकता है – इससे और पीछे नहीं। लेकिन 'आधुनिक हिन्दू' की सर्वाधिक संशयात्मक

विडम्बना तो यही है कि आदि और वैदिक की 'ऐतिहासिकता' कैसे प्रमाणित करे। फिरंगी गुलामी के दौर में उसने यही सीखा है कि जो कुछ 'ऐतिहासिक' नहीं वह सत्य और प्रामाणिक नहीं। जो कुछ 'ऐतिहासिक' नहीं वह 'सभ्यता' नहीं। इस गुलाम मानसिकता में फंसा हिन्दुत्व 'गौरवान्वित' होने के लिए देश भर की दीवारों को बदसूरत बना रहा है।

तीर्थ परंपरा का पतन

आधुनिकता की चाह से उपजी असुरक्षा, निकट भूत और वर्तमान में पनपी मत-मतांतर की धर्माधता और आधुनिकतावादी हिन्दुत्व के उग्रवादी आचरण से विकसित संकीर्णता के कारण पिछले 50-100 वर्षों में तीर्थ परंपराओं और मान्यताओं का भयावह ह्रास हुआ है – जल संबंधी शौच-अशौच के नियम व्यापक रूप से समाप्त हो गये। बड़ी बातों को छोड़ दें आज से सौ वर्ष या 50 वर्ष पहले कोई व्यक्ति शंका-निवृत्त हुए बिना नदी या जलाशय में प्रवेश नहीं कर सकता था – या गांव के जलस्रोतों के क्षेत्र में शंका निवारण नहीं कर सकता था। आम आदमी को इस आचरण के लिए स्वतः समझ थी और स्व-अनुशासित नियमों पर आधारित थी। आज अधिकांश तीर्थ स्थल-नगर, नदियां, जलाशय, कुएं, बावड़ी केवल गंदगी, उससे उत्पन्न दुर्गंध और मिथ्याचार के प्रतीक हैं। इस वास्तविकता को कदापि नहीं नकारा जा सकता कि आज मथुरा-वृन्दावन की यमुना और काशी की गंगा के दर्शन मात्र से धिन का भाव उत्पन्न होता है। और यह सत्य भी बहुत पुराना नहीं कि चीर घाट, विश्राम घाट, दशाश्वमेघ शहरी वास्तुकला एवं नैसर्गिक सौंदर्य की साझी धरोहर के अनुपम प्रतीक थे।

गंदे नाले

नदी नालों की गंदगी का सिलसिला बस उतना ही पुराना है जितना हिन्दू की आधुनिकता और ब्रिटिश गुलामी का इतिहास। प्राकृतिक जल बहाव को गंदे नालों में परिवर्तित करने का काम 1857 के बाद ही शुरू हुआ। लेकिन आज भारतवासियों को यह याद दिलाना लगभग असंभव है कि दो तीन-चार पीढ़ी पूर्व तक देशवासी अपनी रोजमर्रा की आवश्यकता का पानी नियमित रूप से यमुना जी से भर कर लाते थे या इन्ही 'गंदे' नालों में प्रवाहित निर्मल जल का प्रयोग करते थे। दिल्ली शहर में तो कुंओं-बावड़ियों का पानी दोयम माना जाता था। 1950 के आसपास तक दिल्ली शहर की खत्रानियां, बनैनियां, बामनी आदि नियमित रूप से टोलियां बनाकर इकट्ठी होकर रामजस गाती यमुना जी नहाने जाती, और रसोई के लिए आवश्यक एक-दो मटकी पानी लेकर 'जरिजस' गाती वापिस लौटती सूर्योदय से पूर्व ही देखी जा सकती थी। ताजे बहते पानी के प्रयोग की विधि और परंपरा कब और कैसे समाप्त हो गयी इसका न तो हमारे समाजशास्त्रियों को एहसास है, ना ही स्वास्थ्य शास्त्रियों ने यह जानने का प्रयास किया कि दिल्ली शहर के जन स्वास्थ्य पर इस बुनियादी परिवर्तन का क्या प्रभाव पड़ा है। नदियों का प्रदूषण हिन्दुस्तानी विकास और आधुनिकीकरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतीक है। नदियों

के निर्मलीकरण का आंदोलन चलेगा तो स्वदेशी भी चलेगा – स्वदेशी के लिए पवित्र जल और निर्मल मानस आवश्यक है।

पिछले 200 वर्षों से धीरे-धीरे और आजादी के बाद बहुत तेजी से तीर्थ स्वस्थ आध्यात्मिक केन्द्रों की बजाय बाजारू 'पोपलीला' के स्थलों की तरह विकसित होते रहे। नतीजा सामने है कि पुण्य पावन तीर्थ स्थान न तो आज नैसर्गिक सौन्दर्य के प्रतीक हैं और न ही पुण्य प्रेरणा के स्रोत। आज तीर्थ वास्तव में पौराणिक नर्क की कल्पना का पर्याय बन गये हैं। इस परिस्थिति में अनिवार्य है कि तीर्थ पुनरुद्धार कार्यक्रम को लोकधर्मी-लोकाचरण के आधार पर प्रारंभ करने का प्रयास करना चाहिए।

तीर्थ क्षमता

व्यापक पतन के बावजूद तीर्थ आज भी भारतीय समाज में अलौकिक प्रेरणा के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। साथ ही लौकिक एवं नित्य जीवन का आधार भी। आज भी भारत देश का दैनन्दिन जीवन नदी, नालों, तालाब और जल के अन्य प्राकृतिक स्रोतों पर निर्भर है। सैकड़ों-हजारों तीर्थ क्षेत्रों में आज भी ऋषि परंपरा के अनेक प्रेरणादायी साधू-संत मौजूद हैं। ऐसे सच्चे संतों और तीर्थ स्थलों की पुण्य प्रेरणा से इन स्थानों पर लाखों गुरुआधारी और सहज लिटल्ले स्त्री-पुरुष भोजन-भूषा-भवन आदि की चिंता से मुक्त जीवन जी रहे हैं। इन क्षेत्रों की नदियां, ताल, सरोवर, या अन्य तरह के जल स्रोत पुण्य प्रेरणा का स्रोत हैं। जेठी दशहरा, कार्तिक पूर्णिमा, मकर सक्रांति और कुंभ जैसे महापर्वों पर जो लाखों-करोड़ों लोग मीलों पैदल यात्रा कर तीर्थ के जल में स्नान-दान आदि करते हैं – वह आधुनिक जन की तरह पाखंडी या बगुलेभगत नहीं। इस तथ्य को पहचानना आवश्यक है कि घोर पतन के बावजूद तीर्थ के प्रति आम जन की श्रद्धा और विश्वास और तीर्थों का स्थायी-वासी भारतीय साधू समाज स्वतः स्फूर्त सामाजिक ऊर्जा का अनन्त स्रोत है।

देश भर में स्थित विभिन्न संप्रदायों से जुड़े छोटे-बड़े तीर्थ भारतीय राष्ट्रियता के आधार स्तम्भ हैं। राष्ट्र की भौगोलिक परिभाषा तो शायद हमारे विश्वविद्यालयी अध्यापकों को भी न याद हो। किंतु लोक मानस का राष्ट्रीय भूगोल मूलतः तीर्थ सूची आधारित है। और आमजन को यह स्वतः कंठस्थ है। समाज के सभी वर्गों के लिए अमरनाथ, केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री आदि उत्तरी सीमा के प्रतीक हैं, रामेश्वरम-कन्याकुमारी दक्षिणी छोर के, द्वारका पश्चिम का कोना है और कामाक्षी पूर्वी सीमा की देवी। सीमाओं से अतिरिक्त भी समस्त देश का मानचित्र लोक मानस स्तर पर तीर्थ बोध आधारित है। विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृति और सभ्यता से अपनत्व का भाव भी तीर्थ प्रसाद-सामग्री खेल-खिलौने एवं उपयोगी कलात्मक वस्तु आधारित है।

अधिकांश भारतीय तीर्थ (सनातनी, जैन, हिन्दू, सूफी) रमणीक पहाड़ पहाड़ियों, नदी नालों, झील तालाब के या समुद्र के किनारों पर स्थापित किये गये। इस परंपरा में प्राकृतिक संपदा को सुरक्षित और पूर्णतया

सार्वजनिक बनाये रखने का विधान था। तीर्थों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग तो खुल कर किया जा सकता था लेकिन निजीकरणे माध्यम से शोषण या दुरुपयोग नहीं। गंगा यमुना के तटों पर अस्पृश्यता लागू नहीं हो सकती थी – नदियों के घाट सभी के लिए समान रूप से खुले थे। गंगा यमुना अन्य पवित्र नदियों के तटों पर निजी संपत्ति का विकास 100–125 बरस से अधिक पुराना नहीं। तीर्थ स्थलों पर 'आधुनिक हिन्दू' ही निजी संपत्ति का विकास कर सकता है पारंपरिक हिन्दू तीर्थ स्थलों पर सार्वजनिक घाट और धर्मशाला का निर्माण करता था। आधुनिक हिन्दू आर्थिक विकास के लिए गंगा की पवित्रता और नैसर्गिक संपदा के सर्वनाश को उचित मान सकता है। तथाकथित परंपरावादी आधुनिक हिन्दू की तो यह स्पष्ट घोषणा भी है कि गंगा प्रदूषण को रोकने या नर्मना में स्थित शिव तीर्थों की सुरक्षा के लिए विकास की गति को नहीं रोका जा सकता। यह तथ्य बिल्कुल साफ है कि आधुनिक हिन्दू को विकास चाहिए। गंगा की पवित्रता और अविरलता नहीं। आधुनिक विकास और सार्वजनिक स्वच्छता की परंपरा में निहित आधारभूत विरोधाभास इस प्रस्तावना का केन्द्र बिन्दू है। विकासवादी आधुनिक हिन्दू 'विकास' के लिए परम पावन गंगा को इस कदर दूषित कर सकता है कि उसके दर्शनमात्र से घिन की सिहरन मन और शरीर में दौड़ जाती है। दिल्ली, वृन्दावन की यमुना और काशी की गंगा आज किसी गटर से भी ज्यादा गंदी और प्रदूषित है। अनेक राजनेताओं का तो यह स्पष्ट आरोप है कि गंगा की पवित्रता, 'नर्मदा के शिव तीर्थों की सुरक्षा' और वन पहाड़ों की प्राकृतिक संपदा को सुरक्षित बनाये रखने की बात 'राष्ट्रद्रोही – विकास विरोधी तत्व' ही करते हैं। अध्यात्म से उपजी तीर्थ भावना निश्चित ही राष्ट्रीय नव निर्माण की ऊर्जा का स्रोत बन सकती है। हिन्दू की तीर्थ आस्था के माध्यम से समाज की सर्वजातीय – सामुदायिक सामर्थ्य को जागृत किया जा सकता है। स्वच्छल जल की आवश्यकता सभी को है। प्रत्येक हिन्दू को स्वयं गंभीरता से विचार करना होगा कि उसकी तीर्थ आस्था का क्या उपयोग किया जायें। इस विलक्षण लौकिक परंपरा में मानवतावादी पुनर्स्थापना और राष्ट्र निर्माण की असंख्य संभावनाओं का स्रोत विद्यमान है। तीर्थ परंपरा और पौराणिक सनातन धर्म के विकास और विस्तार से जो सामुदायिक ऊर्जा जागृत होगी उसके उपयोग से असंख्य स्वतःस्फूर्त संस्थाओं का नवीनीकरण और निर्माण किया जा सकेगा।

सौंदर्यकरण

तीर्थ स्थलों का स्वच्छ, सुन्दर स्वस्थ नगरीकरण और इन पवित्र पावन रमणीक स्थानों पर उपलब्ध जल स्रोतों का निर्मलीकरण इतना अहम और व्यापक कार्यक्रम है कि इसके माध्यम से भारत गणराज्य की पुख्ता संरचना ओर देश के समस्त उत्पादक स्रोतों का नवीनीकरण दोनों ही सहज संभव है। आधुनिकीकरण की जो ललक पिछले 200 वर्ष से छलावा बनी खड़ी, देश को निरंतर नई गुलामी की तरफ ढकेल रही है, वह तर्भ परंपरा के उद्धार और नवीनीकरण से यथार्थ बदल सकती है और नई

एवं पुरानी – दोनों गुलामियों से सहज ही मुक्त करा सकती है। राष्ट्रीय दुर्भाग्य से आज इस अनंत ऊर्जा का दुरुपयोग पाश्चात्य संस्कृति की पिछलग्गू मानसिकता के विस्तार के लिए हो रहा है। इस कार्यक्रम में निजी गृहस्थी के कूड़े और गंदे पानी की निकासी की यथोचित व्यवस्था सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा है। भारत देश की टोड़ी मानसिकता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण घर से लेकर समूचे देश का कचरा फेंकने के प्रति सामुदायिक उदासीनता है। गनीमत यही है कि राजनीति और प्रशासन में भी गुलाम प्रवृत्ति की व्याप्ति के कारण हमारे देश में कंगाली और जिल्लत की पराकाष्ठा है – एक बहुत बड़ा तबका अपनी आधा पेट रोटी कमाने के लिए कचरा बीनने का काम करता है। जिसके परिणाम स्वरूप काफी बड़ी मात्रा में कागज, प्लास्टिक और टिन स्वयंमेव उठ जाता है, वरना पूरे देश में कचरे के ढेरों के अम्बार लग जायें। कचरे और मल-मूत्र आदि के गंदे पानी की यथोचित व्यवस्था के प्रति भारतीय उदासीनता हमारी आधुनिकता की विलक्षण पहचान है। गरीब, अमीर, साक्षर, निरक्षर, ग्रामीण, शहरी, सरकारी, गैरसरकारी यानी समस्त जन में यह विलक्षणता समान रूप से पायी जाती है। विश्व बैंकआदि जैसे संगठनों के व्यवसायिक दबाव के कारण राष्ट्र एवं प्रांतीय स्तर तक समूचे देश में प्रदूषण बोर्ड-मंडल आदि का गठन हो चुका है। मगर हमारी सिफत और फितरत का क्या कहना – यह बोर्ड और मंडल पूरी लगन के साथ भ्रष्टाचार को बढ़ाने में संलग्न है। प्रदूषण और पर्यावरण के मुद्दे पर हजारों स्वैच्छिक संस्थाओं का निर्माण देश भर में हुआ है – संभवतः लाखों कार्यकर्ताओं की आजीविका प्रदूषण के नाम से चल रही है – लेकिन प्रत्येक भारतीय गंदगी और नाक पर रूमाल रखने जैसी सडांध के प्रति अपनी उदासीनता पर गर्व कर सकता है। इसी गौरव के नारे देशभर की दीवारों का सौंदर्य बढ़ा रहे हैं।

अनेक नगर निगमों ने कचरा ठिकाने लगाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय कर्ज और तकनीक का आयात किया है सिर्फ इसलिए नहीं कि कचरे की सहज व्यवस्था में कोई 'धंधा पानी' संभव नहीं। इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण कारण गुलाम मानस और निजी राष्ट्रीय दृष्टिकोण के नितांत अभाव का है। यह सरल बात है कि कचरा गंदगी नियंत्रण की व्यवस्था घर से शुरू करनी होगी। प्रत्येक आधुनिक घर में चार-पांच तरह का कूड़ा होता है और दो-तीन प्रकार का गंदा पानी। घरेलू कचरे को उसकी प्रवृत्ति के अनुसार अलग-अलग कूड़ेदान में एकत्रित करवाना होगा। घर में एकत्रित कूड़े को सामूहिक-सामुदायिक स्तर पर एकत्रित करवा कर पुनरुपयोग के लिए उचित ठिकाने पर पहुंचाना होगा। इसके बाद ही तकनीक आदि के सवाल उत्पन्न हो सकते हैं। क्या गौभक्त देश में इतना भी संभव नहीं कि कपड़ा, कागज और प्लास्टिक जैसे अखाद्य पदार्थ गऊ मां के खाने के लिए सहज उपलब्ध न रहें। शहरों की भूखी गाय जिस तरह अनेक अखाद्य कूड़े करकट के साथ-साथ कपड़ा (सूती-सिंथेटिक दोनो तरह का),

कागज, प्लास्टिक की थैलियां आदि खा रही है, यह पूरे गोवंश के लिए गंभीर रूप से हानिकारक है। उपयोग में आ चुके पानी को भी तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है।

1. बासी किंतु शुद्ध ऐसा पानी जिससे घर-आंगन में तुलसी, गुलाब, मोतिया, तौरी, सेम, एकाध फल वृक्ष को सिंचित किया जा सकें। घर में कच्चे आंगन की कमी हो तो भी छोटे-बड़े गमले रखे जा सकते हैं।

2. रसोई-स्नान आदि के उपयोग में आया ऐसा जल जिससे मोहल्ले के उद्यान-घर के निकटतम क्षेत्र में – सार्वजनिक उद्यान में घास और नीम आदि के वृक्षों की सिंचाई की जा सकें।

3. ऐसा जल जो संडास से मल आदि की सफाई करता है – उसे सामुदायिक गटर के द्वारा ऐसे कारखानों तक पहुंचाया जाय जहां विष्ठा की गैस को ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सके और ठोस पदार्थ की खा बनायी जा सके और अर्द्ध-शुद्ध जल को खेतों की सिंचाई के लिए उपयोग में लाया जा सके।

उपयोग में आ चुके पानी की समुचित सफाई के प्रति हमारा उदासीन रवैया हिन्दुस्तान में प्रदूषित वातावरण-जलवायु और प्रदूषण से उत्पन्न अनेक बीमारियों के मुख्य स्रोत है। अपने आस-पास की गंदगी के प्रति नागरिक उदासीनता के कारण हमारे गांव और नगर जिनमें हमारे प्राचीन पवित्र तीर्थ शामिल है, सर्वत्र फैली विष्ठा से निरंतर उठती दुर्गन्ध के प्रतीक बन गये है। 'हिन्दू आधुनिकता' के परिवेश मलमूत्र और उपयोग में आये पानी की जो भी व्यवस्था आयोजित की जा रही है वह इतनी प्रदूषणकारी और भयानक है कि एक इंच भूमि और एक बूंद जल भी शुद्ध नहीं बचा। गंगोत्री में जितनी यात्रियों की संख्या बढ़ रही है उतना ही अधिक प्रदूषण गंगा जी में प्रवाहित हो रहा है। आज उत्तरकाशी की गंगा में रात्रिमल-विष्ठा इस तरह तैरती मिलती है जैसे श्रद्धालुओं द्वारा चढ़ाये गये फूल हों। गो-मुख (गंगा का मूल स्रोत) के आसपास सिंथेटिक कचरे के अम्बार अटे पड़े है – जिसकी चिंता विदेश मूल के पर्यावरणवादियों को तो है – मगर हमारे अपने हिन्दुत्ववादियों को नहीं। इस संदर्भ में सरकारी कार्यक्रमों का जो हश्र है वह सबके सामने है। गंगा सफाई योजना के अंतर्गत सैकड़ों करोड़ों नहीं कई हजार करोड़ रुपया व्यय करने के बाद काशी की गंगा छूने योग्य भी नहीं और हरिद्वार की गंगा आचमन के योग्य नहीं।

जल, तीर्थ और गंगा के प्रदूषण तथा गोवंश के सर्वनाश के प्रति यह हिन्दू उदासीनता इसी तरह बनी रही तो हिन्दू संस्कृति, सभ्यता और वैदिक धर्म का लोप अब दूर नहीं। मानव धर्म की रक्षा के लिए आज यह अनिवार्य हो गया है कि गांव-गांव, नगर-नगर 'तीर्थ चेतना संघ' स्थापित किये जाएं जो आम नागरिक के साथ जुड़ कर – घरेलू सामुदायिक कचरा मलमूत्र एवं गंदे पानी की उपयुक्त एवं यथोचित निकासी औश्र व्यवस्था के संदर्भ में स्वतः स्फूर्त लोक-शिक्षा का विकास करें। इस संदर्भ

में सर्वाधिक नाजुक मसला गौवंश की रक्षा का है। 'गोरक्षा' का नारा वर्तमान में एक मिथ्याचारी राजनीति का मुद्दा बन कर रह गया है। वर्ना कोई कारण नहीं कि हिन्दू अपनी सामर्थ्य और जन शक्ति के सदुपयोग से गोवंश को कागज, सिंथेटिक, कपड़ा, और प्लास्टिक जैसा अखाद्य खाने से न बचा सके। गोरक्षा की अत्यंत नाजुक दृष्टि से शहरी कचरे को ठिकाने लगाने की व्यवस्था में कोई मामूली सुधार भी नहीं हुआ। समाज व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन तो टोड़ी विवेक के परे का मसला है।

आधुनिक हिन्दू संभवतः यह भूल गया है कि गाय पूजनीय क्यों है? वैदिक-पौराणिक परंपरा में गाय को ब्राह्मण और तीर्थ दोनों से अधिक महत्वपूर्ण और पवित्र क्यों माना गया? जिजमानी आधारित सृष्टि में गाय परम पिता परमेश्वर के सदृश स्वयं जिजमान है – प्रकृति से जो कुछ लेती है उसे लाखों से गुणा कर वापस करती है। गाय की यह अनवरत जिजमानी ही उसे पूज्य बनाती है। हिन्दू उन्हीं को पूजते हैं जिनके सदृश बनना चाहते हैं – हिन्दू धर्म में गाय व स्त्री (देवी एवं मातृ) पूजा का यही महात्म्य है। यूं तो पौराणिक वाङ्मय में यह भविष्यवाणी देखने को मिलती है कि कलियुग में मानव इतना नीच हो जाएगा कि भूखी गाय को विष्टा – मल खाकर जीवित रहना होगा। कलियुग की पहचान का एक लक्षण यही बताया गया है – 'कलियुग में गरु गू खाय' युग व क्षेत्र की कलियुगी पहचान यही है। आधुनिक भारत में गाय जो कुछ खा रही है वह विष्टा से भी खतरनाक है। गोरक्षा और तीर्थ की पवित्रता मानव की अविरलता के लिए अनिवार्य है। यदि कलियुगी भाव ही स्थायी आचरण बन जाएगा तो मानव सृष्टि की प्रलय निकट ही जाननी चाहिए। यदि दैविक विधान से हिन्दू सभ्यता अपना समय पूरा कर चुकी है तब तो गौवंश का नाश और ग गंगा की मृत्यु अवश्यम्भावी है और जो कुछ हो रहा है वह चिंता का विषय नहीं है।

गुलाम मानस

हमें निरंतर याद करना होगा कि आधुनिक-हिन्दू-मानसिकता का विकास प्लासी की हार के साथ शुरू हुआ था। सन् 1757 में प्लासी की हार के बाद केवल बंगाल की नवाबी का ही पतन नहीं हुआ बल्कि संपूर्ण हिन्दुस्तानी सभ्यता एक अपूर्व दबाव का शिकार हो गई। प्लासी की हार वास्तव में साधारण नहीं थी। सौ-सवा सौ फिरंगियों ने बस दो हजार भाडुतों के बल पर लंबी-चौड़ी फौज को परास्त किया था। प्लासी में सिर्फ सिराजुद्दोला ही नहीं हारा था बल्कि वह जगत सेठ भी हारा था जो समूची विलायती हुकूमत को खरीदने की हैसियत रखता था। जगत सेठ की हार प्रतीकात्मक स्तर पर उस हिन्दुस्तानी बनिये की हार थी जो वास्तव में विश्व व्यापार का नेतृत्व करते थे। इस पराजय के अनेक दीर्घगामी परिणामों में से एक यह भी था कि भारत देश में क्रमशः एक हीन-भावनाग्रस्त शहरी 'आधुनिक शिक्षित' (इसमें नव-वेदांती शामिल है) तबका (वर्ग) विकसित हुआ जो जाने-अनजाने गुलाम मानसिकता का शिकार था। इसी तबके में अंग्रेज हुकमरान के साथ बराबरी की ललक और हिन्द-राष्ट्रीयता की

भावना का समावेश भी था। यही शहरी 'शिक्षित' तबका समाज सुधार में और दो-तीन पीढ़ी बाद राष्ट्रीय आंदोलन में, फिरंगी प्रशासन की हिस्सेदारी में, स्वातंत्र्योत्तर राज नेतृत्व में, स्वतंत्र भारत के प्रशासन में, शिक्षा, समाज के सभी अंग और नवीन धार्मिक संगठनों की संरचना तक में पिछले 150-200 वर्ष से अग्रणी भूमिका का निर्वहन कर रहा है। इस तबके की औपनिवेशिक मानसिकता – जीवन के हर क्षेत्र में 'टोडीवादी दृष्टिकोण' और इस (मानसिकता) के प्रचार-प्रसार द्वारा संपूर्ण समाज पर पकड़ को बहुत धैर्य और बारीकी से ही समझा जा सकता है। आज पूरा समाज, देश इस तबके की गिरफ्त में है। और यह तबका पाश्चात्य औपनिवेशिक मानस से इस कदर ओतप्रोत है कि 'भोगवादी विलास' के अतिरिक्त अन्य कुछ भी देख सकने में असमर्थ है। नेतृत्व और वैचारिक परावलम्बन की इस कैद से मुक्ति का रास्ता सहज और सरल कदापि नहीं।

बर्तानवी हुकूमत से आजादी के बाद पिछले 50 वर्षों में 'टोडी हिन्दू' के आधुनिक विकासवादी मानस का बुत तीव्रता और गहराई से प्रसार हुआ है। समस्त मयवर्गीय हिन्दू के आचार-विचार का तौर तरीका और रहन-सहन की पद्धति में पाश्चात्य नकल पर आधारित भारी फेरबदल हुआ है। बैठक-दीवान खाने आदि का सिर्फ ना ही ड्राइंगरूम नहीं हुआ बल्कि आडम्बर का तौर तरीका भी बुनियादी स्तर पर बदला गया है। रसोईघर का सिर्फ नक्शा ही नहीं बदला या पाटे के स्थान को ड्राइनिंग टेबल ने घेर लिया हो इतना ही नहीं हिन्दू की रसोई में जूतों का प्रवेश सहज ही हो गया। व्यंजन बनाने की पद्धति, ईंधन, भोजन के समय में आमूलचूल परिवर्तन, और ताजे-बासी की अवधारणाओं में भी परिवर्तन हुआ है। उसकी कोई सूझबूझ हमें नहीं है। गुलामी के दिनों फिरंगी नौकरशाहों का रात्री भोजन 9-10 बजे करता है – क्यों? देश के स्वास्थ्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ा? इसका कोई अनुमान हमारे पास नहीं है। हमसे से किसी को यह खबर भी नहीं है कि हमारे रात्री भोजन का समय क्यों बदला है। हममें से अधिकांश को यह भी पता नहीं है कि समस्त पाश्चात्य जगत सायंकालीन भोजन करता है रात्री भोजन नहीं। क्या स्वदेशी शुचिका और हाईजीन सचमुच इतनी निकम्मी थी कि उसे त्यागना ही चाहिए था और उसके स्थान पर जो कुछ हम अपनाते जा रहे हैं वह वास्तव में श्रेयस्कर है। विवेक का प्रयोग स्वतंत्र नागरिक और स्वतंत्र समाज का गुणा है। विवेकहीनता परतंत्र होने का लक्षण है। इसी गुलाम मानसिकता के प्रभाववश 'आधुनिक हिन्दू' को गंगा यमुना के भयावह प्रदूषण से कोई व्यथा नहीं होती। आज खोटे विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हिन्दू सहज भाव से नर्मदा घाटी में स्थित प्रचानी शिवतीर्थों के समूल नाश और गंगा माता की अविरलता के अवरुद्ध होने से व्यथित नहीं है।